हरिश्चन्द्र फैक्ट्री

इस बार फिर शुरुआत एक सवाल से करते हैं। अगर तुम्हें एक मूवी कैमरा (जिससे फिल्म बनाई जाती है) मिल जाए और उसके साथ यह छूट भी कि तुम किसी एक चीज़ का वीडियो बना सकते हो तो बताओ तुम किसका वीडियो बनाओगे?

दादा साहब फालके की भूमिका में नन्दू

मिहिर

अच्छा, जब तक तुम अपने मन का जवाब सोचो तब तक मैं तुम्हें बताता हूँ कि जब आज से तकरीबन सौ साल पहले धुंडीराज गोविन्द फालके को ऐसे ही मूवी कैमरा मिला तो उन्होंने किस चीज़ का वीडियो बनाया? अब तुम पूछोगे कि ये "धुंडीराज गोविन्द फालके" कौन हुए? अरे बताऊँगा, लेकिन पहले किस्सा तो पूरा सुनो। उन्होंने पहला वीडियो बनाया एक उगते हुए पौधे का। अब तुम कहोगे कि उगते हुए पौधे का कोई वीडियो कैसे बना सकता है? अरे भई, पौधा कोई एक दिन में थोड़े न उग आता है कि बस कैमरा लगाया और बन गया वीडियो। पहले बीज डालो, फिर पानी डालो और लगातार उसकी देखभाल करो। तब हफ्तों में कहीं जाकर एक बीज से पौधा तैयार होता है। ठीक कहा तुमने! लेकिन फालके भी इतनी आसानी से हार मानने वाले कहाँ थे। उन्होंने इसके लिए एक अद्‌भुत तरकीब खोजी। उन दिनों हाथ से हैंडल घुमाकर चलाने वाले फिल्म कैमरे आते थे। तो फालके साहब ने क्या किया कि कैमरा गमले के ठीक सामने रख दिया और बिना उसे अपनी जगह से हिलाए वो रोज़ एक तय समय पर उसका हैंडल घुमा देते थे। ऐसा उन्होंने एक महीने तक लगातार किया। फिर उस पूरी रील को धोकर एक साथ प्रोजेक्टर पर चलाया। और चमत्कार! ऐसा लगा जैसे हमने अपनी आँखों के सामने एक पौधा उगते देखा हो।

दादासाहब फालके

यही थी हिन्दुस्तान में बनी पहली चलती-फिरती फिल्म। और इसे बनानेवाले थे धुंडीराज गोविन्द फालके या दादासाहब फालके।

मुझे भी यह सब पहले से कहाँ पता था। हिन्दुस्तान में बनी पहली फिल्म की यह कहानी और उसके साथ जुड़ी दादा साहब फालके की कहानी का मुझे पता चला नई मराठी फिल्म *हरिश्चद्राची फैक्ट्री* से। निर्देशक परेश मोकाशी की बनाई यह फिल्म दादा साहब फालके के जीवन पर आधारित है। दादा साहब फालके हिन्दुस्तान की पहली फीचर फिल्म के निर्माता-निर्देशक थे। उन्होंने ही हिन्दुस्तान में फिल्म निर्माण की शुरुआत की। उन्हें हिन्दुस्तानी फिल्म उद्योग का पितामह माना जाता है। आज भी भारत सरकार फिल्म निर्माण में क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए जो सबसे बड़ा सम्मान देती है उसे "दादा साहब फालके" सम्मान कहा जाता है।

हरिश्चद्राची फैक्ट्री का एक दृश्य

लेकिन यह इतना आसान नहीं था। फिल्म बनाना तब नई-नई कला थी। हिन्दुस्तान में उस वक्त फिल्म बनाने के बारे में कोई भी ठीक से नहीं जानता था। तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई थीं सिनेमा के बारे में। कोई कहता था यह आदमी से उसकी शक्ति छीन लेती है और कोई इसे अँग्रेज़ों का जादू-टोना बताता था। लेकिन गोविन्द फालके हमेशा से विज्ञान में रुचि रखते थे। विज्ञान से इसी गहरे लगाव के चलते उन्होंने फोटोग्राफी का व्यवसाय भी किया और खुद जादू भी सीखा था। पहली बार अँग्रेज़ों के थिएटर में फिल्म देखकर वे इतने चमत्कृत हुए कि उन्होंने ऐसी ही फिल्म भारत में भी बनाने की ठान ली। यहाँ कोई इस कला के बारे में जानता नहीं था इसलिए उन्होंने अपने घर का सामान बेचा और जहाज़ से इंग्लैंड की यात्रा पर निकल पड़े। इंग्लैंड में रहकर उन्होंने फिल्म बनाने की पूरी कला सीखी। जब भारत वापस आए तो अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ मिलकर फैसला कर लिया कि हिन्दुस्तान की पहली फिल्म बनाएँगे। उन्हें उनके दोस्त अपनी "घर फूँक, तमाशा देख" प्रवृत्ति के कारण सत्यवादी हरिश्चन्द्र कहते थे। तो उन्होंने भी तय किया कि पहली फिल्म सत्यवादी "राजा हरिश्चन्द्र" पर ही बनाएँगे।

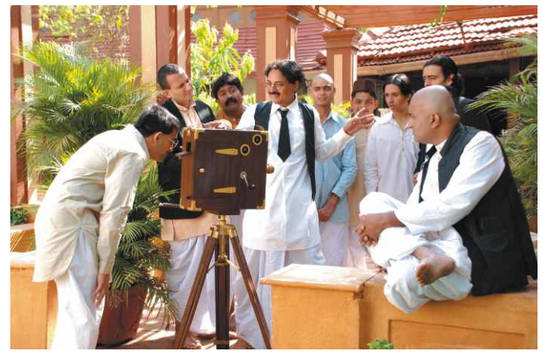

फिल्म बनाते हुए भी बहुत-सी मुश्किलें आईं। उस दौर में महिलाओं का नाटकों में काम करना बुरा माना जाता था। और फिल्म तो वैसे भी एकदम नया माध्यम थी। कोई महिला फिल्म में काम करने को तैयार न हुई। ऐसे में पुरुषों को ही स्त्रियों के कपड़े पहनकर उनके रोल निभाने पड़े। और भी मुसीबतें थीं। फिल्म में स्त्रियों का रोल करने वाले पुरुष अपनी मूँछें मुण्डवाने को तैयार नहीं थे। ऐसी मान्यता जो है कि मूँछें सिर्फ पिता की मौत के बाद मुण्डवाते हैं। बड़ी मुश्किल से अभिनेता माने। फिर भी समाज में फिल्म में काम करने वालों को बुरी नज़र से देखा जाता था। इस मुश्किल के हल के लिए फालके ने कहा कि सारे लोग ये कहा करें कि वे "फैक्ट्री" में काम करते हैं, फिल्म बनाने वाली फैक्ट्री!

मई 1913 में *राजा हरिश्चन्द्र* प्रदर्शित हुई और खूब सराही गई। सन 1914 में फालके को फिर लण्डन जाने का मौका मिला और वहाँ उनकी फिल्में बहुत सराही गईं। उन्हें वहाँ रहकर फिल्म बनाने के प्रस्ताव भी दिए गए लेकिन उन्होंने हिन्दुस्तान में फिल्म उद्योग की स्थापना का जो सपना देखा था उसे पूरा करना उनका सबसे मुख्य ध्येय था। उन्होंने हिन्दुस्तान में ही रहकर सौ से ज़्यादा फिल्में बनाईं और भारत में फिल्म उद्योग की विधिवत शुरुआत की।

हरिश्चद्राची फैक्ट्री के निर्देशक परेश मोकाशी ने फिल्म में दादा साहब फालके को एक ऐसे जुझारू इंसान के रूप में पेश किया है जिसने हर परेशानी का हँसकर सामना किया। फिल्म में एक घटना का ज़िक्र आता है: लगातार फिल्में देखते हुए एक रोज़ उन्हें आँखों में बहुत तकलीफ हुई। डॉक्टर को दिखाने पर उसने आँखों की रोशनी जाने की आशंका व्यक्त की। फालके यह सुनकर उदास हो गए। इसलिए नहीं कि आँखों की रोशनी चली जाएगी बल्कि इसलिए कि अगर उनकी आँखों की रोशनी चली गई तो फिर फिल्म बनाने का उनका सपना अधूरा जो रह जाएगा। ऐसे थे दादा साहब फालके!

क्या तुम जानते हो:

– दादा साहब फालके ने जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट से पढ़ाई की थी। उन्होंने कला भवन, बड़ौदा से मूर्तिकला और फोटोग्राफी सीखी। फिर उन्होंने गुजरात के गोधरा में एक

फोटोग्राफी स्टूडियो खोला। लेकिन वो चला नहीं, लोगों में यह अफवाह जो फैल गई थी कि फोटो खिंचवाने से आदमी की ताकत नष्ट हो जाती है।

– वे प्रक्षिशित जादूगर भी थे। वे "केल्फा" नाम से जादू दिखाते थे। केल्फा मतलब समझे? अरे, उनके नाम फालके का उल्टा केल्फा!

– उन्होंने भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (आर्किओलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया) के लिए भी काम किया। फिर उन्होंने अपनी प्रिंटिंग प्रेस भी खोली। यहाँ उन्होंने चित्रकार राजा रवि वर्मा के लिए भी काम किया।

– जो पहली फिल्म दादा साहब फालके ने देखी थी वो थी *लाइफ़ ऑफ क्राइस्ट* और साल था 1912।

– दादासाहब फालके की बनाई फिल्म *राजा हरिश्चन्द्र* जो हिन्दुस्तान की पहली फीचर फिल्म थी प्रदर्शित हुई 3 मई 1913 को और थिएटर था कोरोनेशन थिएटर, मुम्बई।

– आगे चलकर उन्होंने अपनी फिल्म निर्माण कम्पनी स्थापित की जिसका नाम रखा "हिन्दुस्तान फिल्म कम्पनी"।

– भारतीय सिनेमा के पितामह कहे जाने वाले धुंडीराज गोविन्द फालके के सम्मान में उनके नाम पर भारत सरकार ने सन 1969 में "दादा साहब फालके" पुरस्कार की शुरुआत की। यह उनका जन्म शताब्दी वर्ष था। यह पुरस्कार किसी व्यक्ति को सिनेमा के क्षेत्र में जीवन भर के अविस्मरणीय योगदान के लिए प्रदान किया जाता है। पहले साल इस पुरस्कार को गृहण करने वाली अभिनेत्री थीं देविका रानी। साल 2007 के लिए यह पुरस्कार गायक मन्ना डे को दिया गया है।

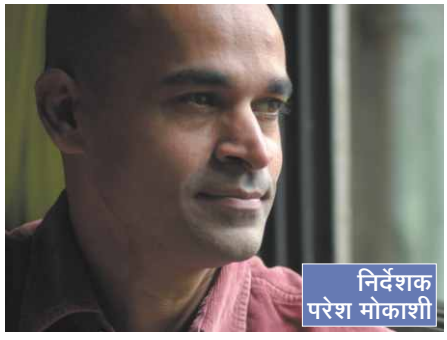
निर्देशक परेश मोकाशी

फिर वही सवाल....

अरे, जिस सवाल से बात शुरू की थी वो तो अधूरा ही रह गया। वही वीडियो बनाने वाला। चलो, मैं तुम्हें अपने मन की बात बताता हूँ। जब मैं छोटा था तो हर बरसात के मौसम में हमारे बगीचे में एक कुतिया छोटे-छोटे पिल्ले देती थी। पहले-दूसरे दिन तो वे इतने छोटे होते कि उनके मुँह भी ठीक से नज़र नहीं आते। वे बिलकुल गुलाबी होते। मुझे उनसे बहुत ही प्यार था। फिर तेज़ी से वे बड़े होने लगते। इधर-उधर भागते। मैं उन्हें एक के ऊपर एक रख देता और वो फिसल-फिसलकर नीचे गिरते। वे अलग-अलग पहचान में आने लगते। मैं उनके अलग-अलग नाम रख देता। चिंटू, प्यारू, भूरू, कालू। उनके साथ खेलने में बहुत मज़ा आता। इस पूरे दौर में उनमें से कुछ मर भी जाते। अगर मुझे कोई उस वक्त कैमरा दे देता तो मैं उनकी वीडियो ज़रूर बनाता। छोटे पिल्लों से बड़े होने की यात्रा। खूब सारी मस्ती और मज़ा। कितना मज़ेदार ख्याल है न!

तुम बताओ, किसका वीडियो बनाते?

वह चली हवा

वह चली हवा,

वह चली हवा।

ना तू देखे

ना मैं देखूँ

पर पत्तों ने तो देख लिया

वरना वे खुशी मनाते क्यों?

वह चली हवा,

वह चली हवा।

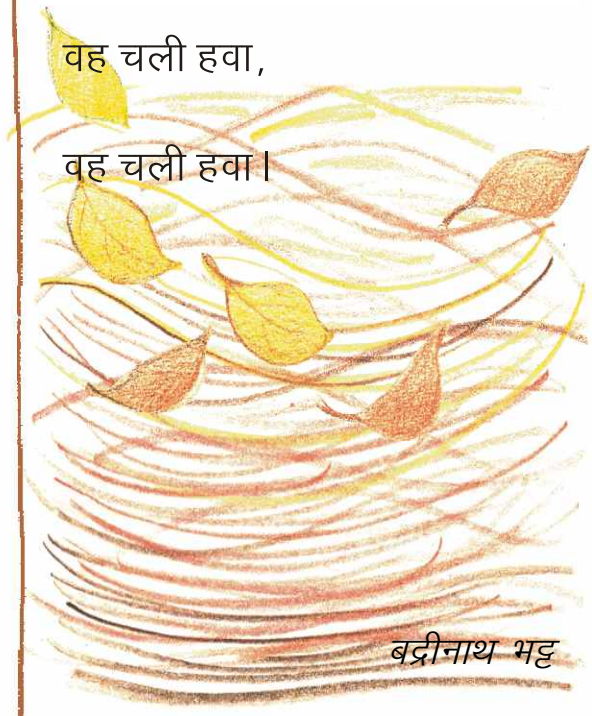

बद्रीनाथ भट्ट